International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 818-821

बौद्धधर्म: योगदान और विकास

अतुल कुमार सिंह
शोध छात्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0पू0 में धर्मसुधार–आंदोलन के परिणाम स्वरूप जिन नवीन धर्मो का उदय और विकास हुआ, उनमें सबसे प्रमुख बौद्धधर्म है। जैनधर्म की तरह ही बौद्धधर्म ने भी अपने अनुयायियों की बड़ी संख्या बना ली। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात भी बौद्धधर्म फलता–फूलता रहा। इसने जैनधर्म से अधिक प्रभावशाली ढंग से लंबे समय तक भारतीय इतिहास को प्रभावित किया।

बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध थे, इनके पिता शुद्धोधन कपिलवस्तु के शाक्यगण के राजा थे। इनकी माता का नाम महामाया था, जो कोशल–राज्य की राजकुमारी थी। 563 ई0पू0 में गौतम का जन्म कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी नामक ग्राम में हुआ था। बुद्ध के जन्म से समबंन्धित अनेक रोचक कथाएँ पालि–साहित्य में संगृहीत है। कहा जाता है, कि बालक के जन्म पर देवताओं ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा की और भविष्यवक्ताओं ने भविष्यवाणी की कि आगे चलकर यह बालक एक चक्रवर्ती राजा या महान संन्यासी बनेगा। गौतम बुद्ध का पालन–पोषण उनकी मौसी महामाया प्रजाप्रती गौतमी ने किया। इस बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया, परंतु गौतम गोत्र में पैदा होने के कारण उन्हें गौतम भी कहा जाता था।

सिद्धार्थ का बचपन ठीक वैसे ही व्यतीत हुआ, जैसे अन्य किसी राजपुत्र का हो सकता था। इनके पिता ने इनकी सुख–सुविधा एवं शिक्षा–दीक्षा की यथोचित व्यवस्था की और इन्हें सदैव रास–रंग में बाँधे रहने का प्रयास किया, इसी उद्देश्य से 16 वर्ष की आयु में ही इनका विवाह यशोधरा नामक सुंदर कन्या से करवा दिया गया, जिससे सिद्धार्थ को राहुल नामक पुत्र भी प्राप्त हुआ।

शुद्धोदन के प्रयासों के बाद भी सिद्धार्थ बचपन से ही चिंतनशील रहने लगे। वे हमेशा एकांत में वृक्ष के नीचे ध्यानरत होकर बैठ जाते थे। यशोधरा और राहुल भी उन्हें सुख और शांति प्रदान नहीं कर सके। वे संसार की अवस्था और जीवन की निरसता से दुखी रहा करते थे, राजमहल का वैभव और विलासितापूर्ण जीवन उन्हें रास नहीं आया। वे मोहमाया से छुटकारा पाने का उपाय सोचते रहते थे। एक दिन नगर में भ्रमण के दौरान, उन्होंने मानव–जीवन की चार अवस्थाओं वृद्ध, रोगी,मृतक, और एक संन्यासी को देखा। यह देखकर गौतम के मन में जीवन से घृणा की भावना उत्पन्न हुई। अपनी पत्नी और पुत्र को निद्रावस्था में ही छोड़कर वे सत्य की खोज में घर से निकल पड़े। इस समय उनकी उम्र 29 वर्ष की थी। गृहत्याग करने के पश्चात उन्होंने राजसी वेशभूषा भी त्याग दी और संन्यासी के वेश में सत्य और ज्ञान की खोज में निकल पड़े। बौद्धग्रंथों में महात्मा बुद्ध के गृहत्याग को महाभिनिष्क्रमण कहा गया है।

कपिलवस्तु को छोड़कर सिद्धार्थ सत्य की खोज में निकल पड़े। उन्होंने तत्कालीन सुविख्यात आचार्य वैशाली के आलार कालाम तथा राजगृह के रामपुत्र के आश्रम में जाकर ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया, परंतु इससे उन्हें संतोष नहीं मिला। उनकी ज्ञान क्षुधा को कोई आचार्य शांत नहीं कर पाया। राजगृह से गौतम गया के निकट उरूवेला की सुरम्य वनस्थली में पहुँचे। वहाँ उन्होंने ब्राह्मण कौण्डिन्य और अन्य चार उपासकों के साथ घोर तपस्या आरंभ कर दी। कठिन साधना के चलते उनका शरीर सूखकर जर्जर हो गया, परंतु उन्हें मनवांछित उपलब्धि नहीं मिली, अतः तप–मार्ग को निरर्थक जानकर उन्होंने सुजाता नामक स्त्री के हाथों खीर खाकर अपनी तपस्या भंग कर दी। इससे महात्मा बुद्ध के अन्य साथी उन्हें पाखंडी घोषित कर उनका साथ छोड़कर चले गए। उरूवेला से गौतम गया चले आए और वहीं एक पीपल के नीचे बैठकर ध्यान करने लगे। समाधिष्ठ होने के आठ दिनों के पश्चात 35 वर्ष की आयु में वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि को उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई और वे 'बुद्ध' कहलाए।

'सम्बोधि' प्राप्ति के पश्चात बुद्ध अपने विचारों के प्रचार के लिए भ्रमण पर निकल पड़े। सर्वप्रथम उन्होंने अपना उपदेश सारनाथ में अपने उन पाँच साथियों को दिया, जो उन्हें पाखंडी बताकर उनका साथ छोड़ गए थे। इस घटना को धर्मचक्र प्रवर्तन कहा जाता है, यहीं पर बुद्ध ने संघ की भी स्थापना की। बुद्ध के पाँच साथी और बनारस के श्रेष्ठि यश भी बुद्ध के शिष्य और संघ के सदस्य बन गए। बुद्ध ने संघ के सदस्यों को बौद्धधर्म के प्रचार का आदेश दिया तथा स्वयं बुद्ध भी धर्मप्रचार के लिए निकल पड़े।

बनारस से बुद्ध मगध पहुँचे, जो अनेक धर्मप्रचारकों की कर्मभूमि थी। राजधानी राजगृह में यद्यपि पहले उनका प्रबल विरोध हुआ, किन्तु धीरे–धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। मगध के राजा बिम्बिसार ने उनके उपदेशों से प्रभावित होकर बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। नगर के अधिकांश व्यक्ति महात्मा बुद्ध के शिष्य बन गए। मगध के अतिरिक्त वैशाली, कोशल इत्यादि स्थानों पर जाकर बुद्ध ने बौद्धधर्म का प्रचार किया। उस समय के अनेक प्रभावशाली शासकों, जैसे बिम्बिसार, अजातशत्रु, कोशलनरेश प्रसेनजित, अनाथपिंडक जैसे धनी व्यापारियों ने भी बौद्धधर्म स्वीकार किया। राजपरिवारों के अनेक सदस्यों, गण–राजाओं और उनकी जनता ने भी महात्मा बुद्ध का स्वागत किया और उनके विचारों को ग्रहण किया । बुद्ध के पिता, उनकी मौसी, पत्नी और पुत्र ने भी नया धर्म स्वीकार किया। वैश्यों और व्यापारी–वर्गों के अतिरिक्त आरंभिक अवस्था में अनेक ब्राह्मणों ने भी बुद्ध के विचारों को ग्रहण किया। जीवन के अंतिम काल में महात्मा बुद्ध धर्म का प्रचार करते हुए कुशीनगर पहुँचे। वहीं चुन्द नामक सुनार के घर भोजन करने के उपरान्त उदरविकार पैदा हुआ और 80 वर्ष की अवस्था में इनको महापरिनिर्वाण की प्राप्ति हुई। अपने जीवनकाल में ही बुद्ध ने बौद्धधर्म को स्थायित्व प्रदान कर दिया था। ऊँच–नीच, स्त्री–पुरूष, सबके

लिए संघ के द्वार खुल गये थे। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात भी बौद्धधर्म का निरंतर विकास होता रहा।

बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ

महावीर की ही तरह बुद्ध ने भी वैदिक धर्म में व्याप्त कुप्रथाओं, पुरोहितों के आधिपत्य एवं यज्ञबलि की व्यवस्था को चुनौती दी। उन्होंने दुखी मानव– समुदाय को कष्टों से छुटकारा दिलाने का उपाय सुझाया जिससे मनुष्य सांसारिक बंधनों से मुक्ति पाकर 'मोक्ष' प्राप्त कर सके। पालि त्रिपिटक– सूत्त, विनय एवं अभिधम्मपिटक से बौद्ध धर्म के सिद्धान्त, दर्शन एवं संघ के संगठन के विषय में जानकारी मिलती है।

बौद्ध धर्म के मूल आधार चार आर्यसत्य है। बुद्ध के सारे सिद्धान्त इन्हीं चार सत्यों–दुःख, दुःख समुदाय, दुःख–निरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा–पर आधारित है। बुद्ध के अनुसार मानव जीवन दुःखों से परिपूर्ण था। ये दुःख मोह–माया, तृष्णा, लालसा इत्यादि के कारण उत्पन्न होते है। परंतु इन दुःखों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। दुःखों से मुक्ति पाने के लिए आष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग ही एकमात्र उपाय है।

बुद्ध द्वारा बताया गया मार्ग अत्यंत सरल था। इसके लिए न तो पुरोहितों की आवश्यकता थी, न यज्ञ एवं बलि की। वेदों का ज्ञान भी इस मार्ग पर चलने के लिए जरूरी नहीं था। इस मार्ग को सभी वर्ण एवं सामाजिक स्तर के स्त्री–पुरूष अपना सकते थे। बुद्ध ने ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया। वे ब्रह्म एवं आत्मा के विवादों में भी नहीं उलझे। बुद्ध के अनुसार मानव–जीवन का परम लक्ष्य निर्वाण प्राप्ति है। इसको प्राप्त करना स्वयं मनुष्य की ही जिम्मेदारी है। सद्जीवन व्यतीत करने से जीवन के इस लक्ष्य को मानव प्राप्त कर सकता है। सदाचारी एवं नैतिक जीवन के लिए आवश्यक था कि मनुष्य दस शीलों का पालन करें। बुद्ध के अनुसार दस शील थे–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, व्यभिचार से बचना, नशीलें पदार्थो का सेवन नहीं करना, असमय भोजन नहीं करना, सुखप्रद बिस्तर का त्याग, नाच–गान से बचना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना। इसके अतिरिक्त बुद्ध ने दान देने, बड़ों की आज्ञा मानने, सबके साथ सद्व्यवहार करने का भी उपदेश दिया। उनका उद्देश्य यही था कि मनुष्य अपने सत्कर्मो द्वारा आष्टांगिक मार्ग का पालन कर निर्वाण प्राप्त कर सके। बुद्ध पुनर्जन्म में भी विश्वास रखते थे। बुद्ध ने इस प्रकार मानव–समुदाय को एक नया जीवन–दर्शन दिया। उन्होंने ईश्वर एवं आत्मा के अस्तित्व को नकार दिया तथा प्राणियों के प्रति सद्भावना एवं समानतापूर्ण नीति अपनाई। तत्कालीन वातावरण में बुद्ध का दर्शन एक क्रांतिकारी कदम था। इसलिए जनता ने बुद्ध और उनके धर्म का अभूतपर्वूक स्वागत किया।

बौद्धधर्म की सफलता के कारण

छठीं शताब्दी ई0पू0 में बौद्धधर्म के उद्भव के साथ ही इसके विकास की भी प्रक्रिया आरंभ हुई। बुद्ध के जीवनकाल में ही बड़ी संख्या में लोग उनके अनुयायी बन गए। उनके महापरिनिर्वाण के पश्चात भी इस धर्म का विकास होता रहा। अशोक और कनिष्क जैसे सम्राटों के प्रयासों से यह धर्म विदेशों में भी फैला। बौद्धधर्म भारत के बाहर चीन, मध्य एशिया, सुदूर–दक्षिण–पूर्व, तिब्बत इत्यादि जगहों तक पहुँच चुका था। बौद्धधर्म के विकास को अनेक कारणों ने प्रभावित किया।

वैदिक धर्म से मोहभंग– बौद्धधर्म का उद्भव ऐसे समय में हुआ, जब वैदिक धर्म पूर्णतः कर्मकांडी बन चुका था। धर्म का महत्व गौण हो गया था एवं आडंबरों की प्रधानता बढ़ गई थी। वेदों और पुरोहितों की सत्ता को प्रभावशाली ढंग से चुनौती देने वाला कोई नहीं था। यज्ञ और बलि की प्रथा नई आर्थिक व्यवस्था के प्रतिकूल थी। सामाजिक जीवन भी असमानताओं और तनाव से परिपूर्ण था। ऐसी स्थिति में बुद्ध के उपदेशों ने जनता में नई उमंग एवं आशाएँ जागृत कर दी। बौद्धधर्म को बिना पुरोहितों व यज्ञ–बलियों के अपनाया जा सकता था। बौद्ध धर्म में निर्वाण की प्राप्ति के लिए छुआछूत, ऊँच–नीच तथा स्त्री–पुरूष का विभेद नहीं रखा गया। अतः समाज के सभी वर्गों का ब्राह्मणधर्म से मोहभंग हुआ और उन्होंने बुद्ध के उपदेशों को अपना लिया। इसके कारण नए धर्म की लोकप्रियता बढ़ी।

गौतम बुद्ध का प्रभावषाली व्यक्तित्व–बौद्धधर्म को सफलता के शिखर पर पहुँचाने में बुद्ध के प्रभावशाली व्यक्तित्व का भी योगदान था। एक राजपरिवार में उत्पन्न होने के बावजूद सांसारिक सुखों को त्याग कर, संन्यासी का कठिन जीवन अपनाकर बुद्ध ने जनता के समक्ष एक उज्जवल आदर्श रखा। जनता उनके इस त्याग से प्रभावित हुई। जनता ने समझ लिया कि बुद्ध निःस्वार्थ भाव से जनकल्याण में लगे हुए है। अतः जनता ने उन्हें अपना समर्थन दिया। बुद्ध के प्रचार का ढंग भी बहुत प्रभावशाली था। वे स्वयं लोगों से मिलते, उनके दुःख दर्द को समझते और संसार में व्याप्त निरसता का उपदेश देते थे । वे स्वयं उन आदर्शो का पालन करते थे, जिनका वे उपदेश दिया करते थे। उनका जीवन सादा और सरल था। अपने विरोधियों पर भी वे तर्क और प्रेम द्वारा विजय प्राप्त करते थे। उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण ही अंगुलिमाल जैसा क्रूर डाकू और आम्रपाली जैसी अधम गणिका तक बौद्धधर्म के अनुयायी बन गए। जनता ने उन्हें अपना सच्चा मित्र और हमदर्द समझकर उनका स्वागत किया।

नवीन धर्म की सरलता– बौद्धधर्म ब्राह्मणधर्म या जैनधर्म की तुलना में अत्यंत सरल था। इसमें न तो पुरोहितों की जरूरत थी और न ही यज्ञ या बलि की। वेदों का ज्ञान भी आवश्यक नहीं था । कोई भी व्यक्ति सदाचारी जीवन अपनाकर जीवन का परम लक्ष्य, निर्वाण, प्राप्त कर सकता था। इस धर्म को अपनाने वालों के लिए जैनियों जैसी अनावश्यक और अव्यवहारिक ढंग से अहिंसा का पालन नहीं करना पड़ता था। सांसारिक जीवन में रहते हुए भी मध्यम मार्ग पर चलते हुए मानव निर्वाण प्राप्त कर सकता था।

प्रचार के रूप में पालि भाषा का व्यवहार– बौद्धधर्म की अपार सफलता का एक प्रधान कारण यह था कि बुद्ध ने अपने विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए सरल एवं सर्वग्राह्य भाषा पालि का व्यवहार किया। संस्कृत का ज्ञान कुछ लोगों तक ही सीमित था, परंतु पालि जनसाधरण की भाषा थी। अतः इस भाषा के व्यवहार द्वारा बुद्ध को अपना संदेश जनसाधारण तक पहुँचाने में सफलता मिली।

प्रचार–शैली की रोचकता– बुद्ध की प्रचार–शैली भी ऐसी थी जिसका जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे अपने विचारों को तर्कपूर्ण ढंग से कहानियों, लोकोक्तियों और मुहावरों के माध्यम से जन–समुदाय के समक्ष पेश करते थे। मानव–जीवन से संबद्ध उदाहरणों और उपमाओं द्वारा वे लोगों को अपनी बातें समझाया करते थे। वे अज्ञानियों को समझाने के लिए हास्य

एवं व्यंग्य का भी सहारा लेते थे। फलस्वरूप, जनमानस उनके विचारों से उद्वेलित हो उठा और जनता ने बौद्ध धर्म को अपना समर्थन दिया।

बौद्ध धर्म का समानता के सिद्धांत पर आधारित होना– नए धर्म को व्यापक बनाने में समानता के सिद्धांत ने भी मदद पहुँचाई। इस धर्म में वैदिक धर्म की तरह असमानता नहीं थी। सभी जाति, पेशे, व्यवसाय और लिंग के व्यक्ति इसे अपना सकते थे। वैदिक धर्म में जहाँ वर्णव्यवस्था पर अत्यधिक बल दिया गया था, वहीं बुद्ध ने ऊँच–नीच, शूद्र–ब्राह्मण आदि का विभेद मिटा दिया। इस धर्म के द्वार क्षत्रियों, ब्राह्मणों, वैश्यों, शूद्रों और स्त्रियों के लिए समान रूप से खुले हुए थे। इसीलिए वैदिक व्यवस्था से त्रस्त जनता को राहत की नई दिशा दिखाई पड़ी और सभी ने बौद्धधर्म का स्वागत किया, हजारों की संख्या में बौद्धधर्म के अनुयायी बन गए।

नई आर्थिक व्यवस्था को समर्थन– बौद्धधर्म की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि इसने नई अर्थव्यवस्था को समर्थन दिया। वैदिक धर्म छठी शताब्दी में हुए आर्थिक परिवर्तनों का विरोधी था। वह बलि द्वारा पशुधन, जो नई कृषि–व्यवस्था के लिए आवश्यक था, का संहार कर रहा था। समुद्री व्यापार, सूत और कर्ज की व्यवस्था, नागरिक जीवन का विकास इस धर्म के प्रतिकूल था। इन प्रतिबंधों से नई आर्थिक व्यवस्था और उससे संबद्ध लोगों को अपार क्षति उठानी पड़ रही थी। इसलिए वैश्यों के बीच धर्म का प्रभाव कम होता जा रहा था। ऐसी ही परिस्थिति में बुद्ध ने नई आर्थिक व्यवस्था को मान्यता एवं संरक्षण दिया। अहिंसा पर बल देने से कृषक एवं व्यवसायी वर्गो तथा व्यापारियों को राहत मिली। बुद्ध ने समुद्री व्यापार पर भी प्रतिबंध नहीं लगाया। व्यक्तिगत संपत्ति की सुरक्षा, कर्ज एवं सूत की व्यवस्था पर भी बौद्धसाहित्य में प्रतिबंध नहीं लगाया गया। जातकथाओं में इसका वर्णन मिलता है। बुद्ध नगरीय–जीवन के भी विरूद्ध नहीं थे। वे स्वयं विभिन्न नगरों में घूम–घूमकर धर्म प्रचार करते थे। बुद्ध के इन विचारों को व्यवसायी वर्ग ने अपने अनुकूल माना। फलतः बहुत बड़ी संख्या में व्यापारी बुद्ध के समर्थक बन गए। श्रावस्ती के अनाथपिण्डक, बनारस के यश जैसे अनेक धनाढ्य व्यापारियों ने बौद्धधर्म को अपनाया तथा इसे भरपूर आर्थिक सहायता प्रदान की।

राजकीय संरक्षण– बौद्धधर्म को राजकीय संरक्षण से भी अपने प्रचार–प्रसार में मदद मिली। चूँकि बुद्ध स्वयं ही राजकुल में उत्पन्न हुए थे, अतः तत्तकालीन क्षत्रिय–शासकों ने, जो स्वयं अपने–आपको पुरोहितों के आधिपत्य से स्वतंत्र कर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करना चाहते थे, बुद्ध के सिद्धांतों को प्रतिक्रिया स्वरूप स्वीकार कर लिया। बुद्ध के जीवनकाल में बिम्बसार, अजातशत्रु, प्रसेनजित, गणराज्यों के राजाओं इत्यादि ने बौद्धधर्म को ग्रहण कर लिया। आगे चलकर अशोक, कनिष्क, हर्षवर्धन एवं पाल–शासकों का भी संरक्षण इस धर्म को प्राप्त हुआ। यद्यपि अशोक के अतिरिक्त किसी भी अन्य शासक ने अहिंसा की नीति का पालन नहीं किया, तथापि इन शासकों ने बौद्धधर्म के प्रचार–प्रसार में अत्यधिक दिलचस्पी ली। राज्याश्रय मिलने से बौद्धधर्म का तेजी से विकास हुआ।

बौद्धसंघ का योगदान– बौद्धधर्म के विकास में संघ का भी बहुमूल्य योगदान रहा है। संघ का संगठन बुद्ध ने अपने जीवनकाल में ही धर्मप्रचार हेतु किया था। संघ में शामिल होने वालों को नियंत्रित एवं सदाचारी जीवन व्यतीत करना पड़ता था। संघ के सदस्य पूर्ण उत्साह के साथ घूम–घूमकर बुद्ध के संदेशों का प्रचार करते थे। संघ को अनेक विद्वानों एवं धनी व्यापारियों का समर्थन मिला। व्यापारियों ने विदेशों में भी इस धर्म को फैलाया। नागार्जुन, वसुमित्र, धर्मकीर्ति जैसे विद्वानों के प्रयास से बौद्धधर्म के प्रचार में सहायता मिली। बौद्ध संगीतियों ने भी इस धर्म को बढ़ाया। फलतः 12वीं शताब्दी तक भारत के बाहर भी बौद्धधर्म का विस्तार हो चुका था।

बौद्धधर्म का विकास

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात बौद्धधर्म का प्रचार बंद नहीं हुआ, बल्कि इसके विकास की प्रक्रिया और तीव्र हो उठी। बुद्ध की मृत्यु के कुछ वर्षो पश्चात राजगृह में बौद्धों की पहली सभा हुई, जिसमें बुद्ध के प्रधान शिष्य उपाली ने अपनी स्मृति से विनयपिटक का पाठ किया। आनंद बुद्ध के दूसरे प्रधान शिष्य ने सुत्तपिटक का पाठ किया। इन्हें बाद में संगृहीत कर ग्रंथ का रूप दिया गया, और इन्हीं को आधार मानकर संघ का संगठन किया गया और धर्म का प्रचार हुआ। बौद्धों की दूसरी सभा बुद्ध की मृत्यु के एक शताब्दी पश्चात् वैशाली में हुई। इस सभा में मठीय अनुशासन से संबद्ध बातों पर मतभेद हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप संघ दो वर्गो में विभक्त हो गया। परंपरावादी स्थविरवादी कहलाए और जो नई परिस्थितियों से समझौता करते हुए संघ के संगठन में परिवर्तन चाहते थे, इन्हें महासंघिक कहा गया। बौद्धों की तीसरी महासभा पाटलिपुत्र में सम्राट अशोक के संरक्षण में बुलाई गई। इस सभा में भी अनेक मतभेद पैदा हुए, परंतु अंततः स्थविरवादियों की जीत हुई और रूढ़िवादी संप्रदाय के रूप में यह प्रतिष्ठित हुआ। अशोक ने इस सभा में विशेष दिलचस्पी ली। इसी सभा में संघ में फूट डालने वालों के विरूद्ध कड़ी कार्रवाई करने का निश्चय हुआ। इस सभा में अभिधम्मपिटक को अंतिम रूप दिया गया। अशोक के समय तक अनेक विहारों की स्थापना हो चुकी थी, प्रो0 ए0एल0 बाशम के अनुसार ''धर्म का रूप ग्रहण करने में बौद्धों ने उस समय की सभी लोकप्रचलित आस्थाओं से कुछ प्राप्त किया तथा उसकी अनुरूपता ग्रहण की।'' बौद्धों ने चैत्यों की उपासना–पद्धति को अपना लिया। कहा जाता है कि स्वयं अशोक ने 84,000 स्तूपों का निर्माण करवाया। बोधिवृक्ष की यात्रा भी बौद्धों का एक पावन कर्त्तव्य बन गया। बौद्ध के जीवन से संबद्ध अन्य स्थल–कपिलवस्तु, सारनाथ तथा कुशीनगर भी धार्मिक स्थल के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। स्वयं बौद्धधर्म इस समय तक एक समर्थ धर्म के रूप में स्थापित हो चुका था।

मौर्य साम्राज्य के पतन के तत्काल बाद बौद्धधर्म को नव–ब्राह्मणवाद के उदय और पुष्यमित्र शुंग के अत्याचारों का सामना करना पड़ा, फिर भी इससे इसकी लोकप्रियता में कोई विशेष कमी नहीं हुई। स्तूपों और विहारों का निर्माण तथा धर्मप्रचार का कार्य पूर्ववत चलता ही रहा। उसी समय बौद्धों के सौभाग्य से कनिष्क जैसा सम्राट हुआ, जिसने बौद्धधर्म के एक नए रूप का विकास किया। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में बौद्धधर्म मध्य एशिया तक पहुँच गया। धर्म के इस प्रसार में व्यापारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चौथी और अंतिम सभा हुई, इस समय तक बौद्धधर्म में अनेक मतों का विकास हो चुका था। चौथी सभा में ये विवाद पुनः उभरकर सामने आए। फलतः इसी सभा में बौद्धधर्म दो शाखाओं हीनयान और महायान में विभक्त हो गया। हीनयानी अब भी बौद्धधर्म की

प्राचीन परंपरा को बनाए रखना चाहते थे, परंतु महायानी अब बुद्ध को ईश्वर के रूप में देखने लगे। फलतः, बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण कर उनकी पूजा की गई। महायान बौद्धधर्म अधिक उदार और विकासशील था इसने तत्कालीन परिवर्तनों को आत्मसात कर धर्म को एक नया रूप प्रदान किया। इस समय से महायान धर्म का ही प्रचार अधिक हुआ, हीनयान का महत्व घटने लगा। भारत में इसका प्रभाव कम हो गया, परंतु श्रीलंका और दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों में यह अपना अस्तित्व बनाए रख सका। महायान–संप्रदाय का प्रचार मध्य एशिया, चीन एवं जापान में हुआ।

गुप्त साम्राज्य के अधीन बौद्धधर्म के विकास को पुनः धक्का लगा, क्योंकि अधिकांश गुप्त–शासकों ने ब्राह्मणधर्म को ही आश्रय दिया, तथापि इसका प्रभाव पूर्णतः लुप्त नहीं हुआ। सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री हुएनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि कन्नौज, नालंदा और बंगाल में इस धर्म का गौरव पूर्ववत बना हुआ था, परंतु स्वातघाटी, गांधार, कश्मीर, पंजाब, मध्यक्षेत्र, मथुरा, कौशांबी, बनारस, पाटलिपुत्र आदि जगहों में इस धर्म का प्रभाव कमजोर हो गया था। पहले के बौद्धविहार अब वीरान एवं खँडहर बन चुके थे और उनमें रहने वाले भिक्षुओं की संख्या घट गई थी। विहारों से अधिक संपन्न और अधिक संख्या में मंदिर थे। इसका कारण था कि हर्षवर्द्धन के पश्चात और उसके राज्य के बाहर किसी भी प्रभावशाली शासक ने इस धर्म को प्रोत्साहन नही दिया। आठवीं शताब्दी से तांत्रिक प्रभाव के कारण महायान–धर्म का रूप भी परिवर्तित हो गया। अब वह वज्रयान, सहजयान, या मंत्रयान के रूप में विख्यात हो गया। ब्राह्मणधर्म की तरह बौद्धधर्म की विभाजक रेखा ही समाप्त हो गई। फलतः ब्राह्मणधर्म के पुनरूत्थान ने बौद्धधर्म को गौण बना दिया। पाल–शासकों के संरक्षण में बंगाल और बिहार में बौद्धधर्म मात्र विहारों तक सीमित रह गया। 11–12वीं शताब्दी के तुर्क आक्रमकारियों ने इन विहारों को नष्ट कर बौद्धधर्म का बचा–खुचा प्रभाव भी समाप्त कर दिया। नालंदा, विक्रमशिला, उदयंतपुरी और अन्य केन्द्र नष्ट हो गए। बड़ी संख्या में बौद्धभिक्षु मारे गए, जो बच गए वे नेपाल तथा तिब्बत भाग गए, भारत में इस धर्म का व्यापक प्रभाव समाप्त हो गया और यह फिर कभी अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सका, लेकिन फिर भी बौद्धधर्म का प्रभाव पूर्णतः कभी समाप्त नहीं हुआ।

बौद्धधर्म का योगदान

बौद्धधर्म ने भारतीय समाज, धर्म, दर्शन, साहित्य और कला पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा। धार्मिक क्षेत्र में इसने पुरोहितों और वेदों की सत्ता को समाप्त कर दिया। अब कोई भी व्यक्ति बुद्ध के मार्ग पर चलते हुए स्वयं ही निर्वाण प्राप्त कर सकता था; उसके लिए पुरोहितों की आवश्यकता नहीं थी। निर्वाण भी यज्ञ एवं बलि द्वारा नहीं, बल्कि सदाचारी जीवन व्यतीत करने से ही प्राप्त हो सकता था।

बौद्धधर्म के उद्‌भव एवं विकास ने भारतीय कला को भी प्रभावित किया। स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। गुहा–मंदिरों का निर्माण इस काल में हुआ, बराबर की पहाड़ियों में नासिक, अजंता, एलोरा इत्यादि। इसके साथ–साथ अनेक स्तूपों, विहारों एवं चैत्यों का भी निर्माण हुआ। इनके निर्माण की एक विशिष्ट कला–शैली थी, जो बौद्ध स्थापत्यकला के नाम से विख्यात है। इस कला ने मध्य एशिया एवं दक्षिण–पूर्व एशिया की स्थापत्य–कला को भी प्रभावित किया। बौद्धधर्म के प्रभाव से मूर्तिकला का विकास हुआ। बुद्ध की विशाल और सुंदर मूर्तियाँ बनाई गई, ये मूर्तियाँ धातु और पत्थर की बनीं, गांधार और मथुरा की विशिष्ट शैलियों में बुद्ध की प्रतिमाएँ बनीं। बौद्ध–मूर्तिकला का प्रसार मध्य एशिया में भी हुआ। बामियान में बुद्ध की सबसे ऊँची प्रतिमा है। चित्रकला की भी पर्याप्त प्रगति हुई, बुद्ध के जीवन से संबद्ध दृश्यों को कलात्मक ढंग से उभारने का प्रयास किया गया। बाघ, अजंता और एलोरा की गुफाओं की चित्रकारियाँ इसका सबसे उत्कृष्ट नमूना पेश करती है।

बौद्धधर्म के प्रसार ने विदेशों के साथ भी मधुर संबंध बना दिए। अशोक ने इस धर्म का प्रचार श्रीलंका एवं अन्य स्थानों में किया। कनिष्क के प्रयासों से यह धर्म मध्य एशिया तक पहुँच गया। आगे चलकर चीन, जापान, दक्षिण–पूर्व एशियाई देशों, तिब्बत और नेपाल में भी यह धर्म फैला। धर्म के विकास के साथ–साथ इन देशों से व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध भी स्थापित हुए। अनेक बौद्ध–व्यापारी विदेश गए और वहाँ की प्रथा अपने यहाँ लाए, इस प्रकार बौद्धधर्म, ने भारतीय जीवन को गहरे ढंग से प्रभावित किया एवं विश्व स्तर पर भी बौद्धधर्म ने भारत को एक नया आयाम प्रदान किया, जो प्राचीन काल से आज तक अनवरत चला आ रहा है।

संभर्द ग्रंथ सूची

1. अँगने लाल, संस्कृति साहित्य में भारतीय जीवन, कैलाश प्रकाशन लखनऊ, 1972
2. पाण्डेय, जय नारायण, पुरातत्व विमर्श, 2006
3. थापर, रोमिला, प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली
4. सिंह, परमानन्द, बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, वाराणसी 1996
5. सेंगर, शैलेन्द्र, प्राचीन भारत का इतिहास, अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली 2005
6. सिंह, मदन मोहन, बुद्ध कालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1972
7. शर्मा, रामशरण, प्रारंभिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली
8. शास्त्री, चतुर्शेन, बुद्ध और बौद्धधर्म, लखनऊ 1996
9. श्रीवास्तव, के0सी0 , प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद यूनाईटेड बुक डिपो